इकाई 3 भारतीय काव्यशास्त्र : संदर्भ–आधुनिक काल

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 हिंदी काव्यशास्त्र की विकास यात्रा : एक अवलोकन

3.3 आधुनिक काल में भारतीय काव्यशास्त्र का विकास

- 3.3.1 शुक्ल के पूर्ववर्ती चिंतक
- 3.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- 3.3.3 आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
- 3.3.4 नंद दुलारे बाजपेयी
- 3.3.5 डॉ. नगेन्द्र
- 3.3.6 राममूर्ति त्रिपाठी

3.4 संप्रेषणीयता और रचनाशीलता : अज्ञेय का काव्य चिंतन

3.5 सारांश

3.6 अवधारणात्मक शब्द

3.7 उपयोगी पुस्तकें

3.8 बोध प्रश्न

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आचार्य शुक्ल के पूर्ववर्ती चिन्तकों के काव्य-चिन्तन से अवगत होंगे,
- आचार्य शुक्ल के महत्वपूर्ण काव्य-चिन्तन को जान सकेंगे,
- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के काव्य-चिन्तन से परिचित होंगे,
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के काव्य-चिन्तन से परिचित होंगे,
- डॉ. नगेन्द्र के काव्य-चिन्तन से परिचित होंगे,
- विद्यानिवास मिश्र के काव्य-चिन्तन से परिचित होंगे,
- राममूर्ति त्रिपाठी के काव्य-चिन्तन से परिचित होंगे; और
- संप्रेषणीयता संबंधी चिंतन से परिचित हो सकेंगे।

BHDC-106.indd 34 19-03-2021 08:51:33

3.1 प्रस्तावना

साहित्य समाज एवं जीवन का आपसी सम्बन्ध होता है, इसलिए जीवन एवं समाज के मूल्य निर्धारण के लिए साहित्य उच्चकोटि का होना ही चाहिए। इस कोटि का निर्धारण काव्यशास्त्र करता है, अतः काव्यशास्त्र की उपादेयता निर्विवाद है। भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में उपलब्ध प्रथम ग्रंथ भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' है। तब से आज तक विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया है। इन विद्वानों में भामह, दण्डी, वामन आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र आदि संस्कृत के उल्लेखनीय व प्रसिद्ध आचार्य हैं। तदुपरान्त हिंदी में कृपाराम सूरदास, रहीम, केशवदास, चिन्तामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि आदि का योगदान उल्लेखनीय है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. गुलाबराय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, नन्ददुलारे बाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, विद्यानिवास मिश्र, राममूर्ति त्रिपाठी, अज्ञेय आदि ने इस शास्त्रीय धारा को आगे बढ़ाया और अपने योगदान से इसे युगानुकूल बनाया। उल्लेखनीय तत्व यह है कि इन विद्वानों ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में एक संतुलन बनाकर समय की आवश्यकता के अनुसार उसे तर्कसंगत, वैज्ञानिक एवं बोधगम्य बनाया।

3.2 हिंदी काव्यशास्त्र का विकास प्रक्रिया : एक अवलोकन

हिंदी काव्यशास्त्र का प्रारम्भ भक्तिकाल से होता है। कृपाराम की 'हिततरंगिणी' वह ग्रन्थ है जिसे यह श्रेय प्राप्त है। इसके पूर्व मम्मट, रुय्यक, हेमचन्द्र, गुणचन्द्र, जयदेव, विश्वनाथ, भानुदत्त, जगन्नाथ जैसे विद्वानों ने अपने पूर्ववर्ती रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य के प्रवर्त्तकों, व्याख्याताओं के सिद्धान्तों पर अनुकरण, चिन्तन व समन्वय के आधार पर प्रकाश डाला था। ये विद्वान किसी एक मत के समर्थक नहीं, बल्कि सबको महत्व देने वाले थे। तथापि मौलिकता तथा विश्लेषण के अभाव का आरोप इन पर है।

हिंदी काव्यशास्त्र में कृपाराम, सूरदास एवं रहीम के पश्चात केशव, चिन्तामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास, देव, प्रतापसाहि आदि इनके काव्यशास्त्रीय चिन्तन को आप दूसरी इकाई में पढ़ चुके हैं। उन्होंने काव्यशास्त्र का प्रणयन किया। ये समस्त कवि अपने पूर्ववर्ती संस्कृत के आचार्यों से, उनकी विवेचन शैली से अवगत थे, किन्तु उस स्तर का कार्य नहीं कर पाये क्योंकि ये कवि पहले और आचार्य बाद में थे। इसी कारण इनका तत्व-विवेचन उतना गम्भीर नहीं था।

विकास क्रम में अब आधुनिक काल आता है जिसे 1) भारत द्विवेदी युग 2) शुक्ल युग और 3) शुक्लोत्तर युग में सुविधा की दृष्टि से विभाजित किया जा सकता है। प्रथम काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने 'नाटक' नामक निबंध से प्राचीन एवं नवीन काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के समन्वय पर बल दिया। ये मूलतः रसवादी थे। इस क्षेत्र में प्रेम, साख्य, भक्ति और आनन्द को रस मानना उनकी मौलिकता का परिचायक है। संस्कृत एवं बंगला का प्रभाव उन पर था। श्यामसुन्दर दास, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी अपनी रचनाओं में काव्य सिद्धान्तों का विवेचन किया। द्विवेदी जी ने मान्यताओं में समयानुकूल परिवर्तन को स्वीकार किया। काव्य का उद्देश्यपूर्ण एवं मर्यादित होना भी द्विवेदी जी आवश्यक मानते हैं। इनका रसवाद भी मर्यादित है। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने अनेक प्रसंगों में भावों के महत्व को स्वीकार किया है इसलिए निर्विवाद रूप से वे भी रसवादी आचार्य हैं।

BHDC-106.indd 35 19-03-2021 08:51:33

द्वितीय काल आचार्य शुक्ल का है। इन्होंने परम्परागत काव्यशास्त्र को नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। आधुनिक समय और परिस्थितियों के अनुसार इन्होंने रस सिद्धान्त की व्याख्या की। हिंदी साहित्य को यह उनकी अनुपम देन है। इसी समय बाबू गुलाबराय ने कोष इतिहास, भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र आदि कई क्षेत्रों में अपना योगदान दिया। आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने भारतीय एवं पाश्चात्य सिद्धान्तों को सहज व सुबोध शैली में प्रस्तुत कर आगे का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक एवं व्यावहारिक समीक्षा प्रस्तुत की। डॉ. नगेन्द्र ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की आधुनिक एवं मौलिक व्याख्या की। इन विद्वानों के अतिरिक्त आचार्य बलदेव उपाध्याय श्री राम दहिन मिश्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत आदि ने भी रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, औचित्य, नायक-नायिका भेद आदि काव्यशास्त्रीय तत्वों का आधुनिक दृष्टिकोण से विवेचन किया।

स्पष्ट है कि आचार्य भरत मुनि से प्रारम्भ हुआ भारतीय काव्यशास्त्र भामह दण्डी से होता हुआ निरन्तर विकसित होता गया और हिंदी में तो इसका स्वरूप इतना व्यापक हो गया कि सामान्य पाठक भी इससे परिचित होने लगा। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि परंपरागत काव्यशास्त्र हिंदी में आ कर और विकसित और प्रौढ़ हो गया है।

3.3 आधुनिक काल में भारतीय काव्यशास्त्र का विकास

आधुनिक काल में भारतीय काव्यशास्त्र के विकास को सुविधा की दृष्टि से तीनों भागों में विभक्त किया जा सकता है।

3.3.1 शुक्ल के पूर्ववर्ती चिंतक

इस काल में भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों व तत्वों का विवेचन अनुकरण एवं मौलिकता के आधार पर किया गया। इस क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु व श्यामसुन्दर दास प्रभृति विद्वान आते हैं।

इस काल में परम्परा से चली आ रही शृंगार की श्रेष्ठता विद्यमान रही। कवि ठाकुर के पौत्र ने शृंगार रस के अनेक मनोहारी छन्दों की रचना की। इसके अनुज सेवक ने बरवै छन्द में 'नरवशिख' की रचना की, सरदार कवि ने रीतिबद्ध शैली में 'साहित्य सरसी' एवं 'शृंगार संग्रह' की रचना की। चन्द्रशेखर बाजपेयी ने भी 'नखशिख' की रचना की। रामजस ने 'कविकल्पद्रुम' की रचना की यह ध्वनि सिद्धान्त सम्बंधी रचना है किन्तु रस, अलंकार एवं छन्द का भी विवेचन इसमें किया गया है। चन्द्रशेखर बाजपेयी का 'रसिक विनोद' रस एवं नायिका भेद का विवेचन करने वाला ग्रन्थ है। ग्वाल का 'रासरंग' भी रस का निरूपण करता है, इसी तरह सेवक का 'वाग्विलास' नायिका भेद, रस एवं भाव का विवेचन करने वाला ग्रन्थ है। बाबू गोपाल चन्द्र गिरिधर दास के– 'भूषण' में छन्द वर्णन, अलंकार और रस का विवेचन किया गया है। बैजनाथ द्विवेदी कृत 'सीतारामाभरण मंदारी' अलंकार विवेचक ग्रन्थ है। इन्हीं के 'राम रहस्य' शीर्षक ग्रन्थ में शृंगार को रस राज सिद्ध किया गया है। और शृंगार के साथ अन्य रसों के लक्षण उदाहरण दिये गये हैं। 'वृत्तानि दोष कदम्ब' में काव्य-दोषों का विवेचन हैं।

'बाग्विलास' में नायक-नायिका भेद संबंधी विवेचन है। 'उद्दीपन शृंगार' में शृंगार रस की अनेक उद्दीपन सामग्रियों का विवेचन है। 'अनुभव उल्लास' में अनुभाव,

BHDC-106.indd 36 19-03-2021 08:51:33

संचारी भाव और श्रृंगार रस सम्बंधी चर्चा है। 'चित्राभरण' में चित्रालंकार का वर्णन है। गोपालचन्द्र के इन अनेक ग्रन्थों के क्रम में सरदार कवि की टीका (जो उन्होंने केशव की 'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' पर लिखी है), उल्लेखनीय है।

भारतेन्दु युगीन कवियों व आचार्यों ने कविता के लिए 'रस' को अनिवार्य उपकरण स्वीकार किया है। 'श्रृंगार' को रसराज माना है। माधुर्य भक्ति परक श्रृंगार, नखशिख, षड्ऋतु वर्णन तथा नायिका भेद का सरस व मनोहारी वर्णन किया है।

द्विवेदी युग में कविराज मुरारिदान का 'जसवन्त भूषण' महाराज प्रताप नारायण सिंह का 'रस कुसुमाकर' जगन्नाथ भानु का 'काव्य प्रभाकर' लाला भगवानदीन की 'अलंकार मंजूषा' सीताराम शास्त्री का साहित्य सिद्धान्त' कन्हैया लाल पोद्दार का 'काव्य कल्पद्रुम' अर्जुन दास केडिया का 'भारती भूषण' शुकदेव बिहारी मिश्र का 'साहित्य पारिजात' अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'रसकलश' आदि प्रमुख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं। इन सिद्धान्त ग्रन्थों में नये अलंकारों की खोज करने का प्रयास, उर्दू, अंग्रेजी, अरबी, फारसी के अलंकारों के सम्बंध में जानकारी, कालानुसार नई नायिकाओं की कल्पना आदि विशेषताएँ हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं 'रसज्ञ रंजन' में विषयानुकूल नये छंद, शुद्ध एवं सरल भाषा, अर्थ की सरसला आदि पर विशेष बल दिया है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'साहित्यालोचन' शीर्षक अपने ग्रन्थ में भारतीय रस सिद्धान्त के साथ कला, साहित्य एवं कविता आदि के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के मतों को भी महत्व दिया। बाबू गुलाबराय ने भी सिद्धान्तों की एकांगिता नहीं समन्वय पर बल दिया था।

स्पष्ट है कि द्विवेदीयुग के लेखकों का निश्चित मत था कि परंपरागत संस्कृत साहित्य सिद्धान्त आधुनिक काल की रचनाओं की परीक्षा के लिए सर्वथा अनुकूल नहीं है, इसी कारण इस काल के रचनाकारों ने इनमें समयानुकूल पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्तों का समन्वय किया।

3.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आधुनिक काल के विचारकों व चिन्तकों में आचार्य शुक्ल का स्थान महत्वपूर्ण हैं। शुक्ल जी रसवादी आचार्य हैं। अपने 'रस मींमासा' ग्रन्थ में इन्होंने 'रस' को आध्यात्मिक क्षेत्र से बाहर निकालकर मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। तार्किक दृष्टि से उसे पूर्ण एवं विश्वसनीय बनाया। रस को जगाने वाले भावों का विस्तार के साथ व्यवस्थित एवं मनोवैज्ञानिक विवेचन किया। शुक्ल जी ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्तों का सूक्ष्म अध्ययन किया तथा रस को सर्वश्रेष्ठ एवं काव्यात्मा स्वीकार कर, अन्य मान्यताओं को या तो रस के अन्तर्गत माना या अप्रासांगिक प्रमाणित कर दिया। 'भावों की नयी परिभाषा दे कर उन्हें वर्गीकृत किया। रस को आधुनिक समय की आवश्यकता एवं मनोवृत्ति के अनुकूल व्याख्यायित एवं स्थापित किया। अपनी समीक्षाओं में भी उन्होंने रस को ही स्थित किया। शुक्ल जी ने अपने सिद्धान्त जीवन के अनुभव से निर्मित किए और काव्य की परीक्षा की कसौटी इसी से बनायी। हिंदी में सर्वप्रथम उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की महत्ता व व्यापकता उसके सूक्ष्म व गंभीर अध्ययन से स्पष्ट की। उनका मानना था कि भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न उपादान काव्य-परख के लिए इतने महत्वपूर्ण हैं, कि इनसे नयी, पुरानी प्रत्येक प्रकार की कविता की परीक्षा की जा सकती है। उनका मानना था कि अपने साहित्य को परखने के लिए अपनी दृष्टि का उपयोग करना चाहिए और दूसरे देश

BHDC-106.indd 37 19-03-2021 08:51:33

के साहित्य को रखने के लिए भी हमें अपनी ही दृष्टि का उपयोग करना होगा। इसी दृष्टि निर्मिति के लिए उन्होंने 'नाट्यशास्त्र', ध्वन्यालोक', 'दशरूपक', 'काव्यमींमासा', 'साहित्य दर्पण', 'रसतरंगिणी', 'रस' गंगाधर', आदि भारतीय काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का गंभीर अध्ययन किया था। अपने रससिद्धान्त को उन्होंने इस व्यापक अनुशीलन के उपरान्त मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया था।

आचार्य शुक्ल ने अलंकार, रीति, ध्वनि, गुण, वक्रोक्ति एवं औचित्य सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया था। शुक्लजी इन सबको मान्यता वहीं तक देते थे, जहाँ तक ये रस के पोषक बने रहें। शुक्ल जी ने आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन इन तीनों को विभाव के अन्तर्गत रखा है। इसीलिए कविता में वे विभाव को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इस विभाव-विधान को वे रस परिपाक के लिए अनिवार्य बताते हैं।

शुक्ल जी ने रस की तीन कोटियाँ मानी हैं– उत्तम, मध्यम, और निकृष्ट। जहाँ विभाव विधान आलम्बन के लोकधर्मी स्वरूप के साथ होता है वहाँ उत्तम रस, जब दर्शक या पाठक आश्रय के साथ तदात्म्य नहीं कर पाता वहाँ मध्यम रस और चमत्कार तथा प्रदर्शन की वृत्ति वाली रचनाओं के प्रति कौतूहल को शुक्ल जी ने निकृष्ट रस कहा है। विद्वानों का मानना है कि रस अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि सम्प्रदायों की जो व्याख्याएँ आज प्रचलित हैं वे मुख्य रूप से आचार्य शुक्ल द्वारा ही उद्भावित हैं।

रस सिद्धान्त के प्रति अत्यधिक आग्रह होने के कारण आचार्य शुक्ल ने इसके विरुद्ध स्थित होने वाले सिद्धान्तों का विरोध भी किया है। भारतीय सिद्धान्तों में वक्रोक्ति एवं चमत्कार प्रियता अर्थात 'अलंकार' का विरोध किया है। उक्ति के वैचित्रय को प्रधान मानने के कारण वक्रोक्ति की एवं अतिशय चमत्कृति के कारण अलंकार की अवहेलना वे करते हैं।

आधुनिक सिद्धान्तों में छायावाद, कलावाद, अभिव्यंजनावाद, व्यक्ति वैचित्र्यवाद, प्रतीकवाद, अंतश्चेतनावाद का भी वे विरोध करते हैं क्योंकि ये सिद्धान्त एकांगी एवं प्रदर्शन प्रिय हैं, किन्तु रसवाद के समीप आने वाले आधुनिक सिद्धान्तों को समर्थन देते हैं जैसे– एबरक्राम्बी का 'प्रेषणीयता', का सिद्धान्त, रिचर्ड्स का 'सामान्यीकृत अनुभूतिवाद', कल्पनात्मक अनुभूतिवाद' एवं एडीसन एवं कॉलरिज का 'भाव प्रेरित कल्पनावाद'।

आचार्य शुक्ल का विचार है कि काव्य के आनन्द का आधार लोकानुभूति है। सच्चा सहृदय वही है, जो सम्पूर्ण चराचर के साथ अपने हृदय का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और भाव रूप में इस जगत में लीन हो जाता है। इस प्रकार की हृदय की तन्मयावस्था ही काव्यानन्द है।

3.3.3 आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

भारतीय साहित्य के शास्त्रीय एवं श्रृंगार परक कृतियों के परम अध्येता आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानन्द कवित्त (टीका) हिंदी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव', हिंदी साहित्य का अतीत' एवं 'हिंदी का सामयिक इतिहास' शीर्षक रचनाएँ हिंदी साहित्य को दी हैं। आप रीतिकाल को 'श्रृंगार काल' नाम देना उपयुक्त मानते हैं। अन्य नामों में व्याप्ति दोष समझते हैं। साहित्य को मिश्र जी 'सहितानां शब्दार्थाना भावः' तक ले जाते हैं। साहित्य में 'प्रबन्ध काव्य' में रसात्मकता का पूर्ण अवकाश होने के कारण मुक्तक से प्रबन्ध काव्य इनकी दृष्टि श्रेष्ठ है'। ऐसा इनका मानना है।

BHDC-106.indd 38 19-03-2021 08:51:33

कबीर आदि संतों की वाणी धर्म तत्वदर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, पर मिश्र जी भारतीय काव्यपरंपरा व साहित्य की परिभाषा के अनुसार, उसे साहित्य नहीं मानते। मिश्र जी का मानना है कि शुद्ध साहित्य वहीं है जहाँ रचनाकार का साधन व साध्य दोनों साहित्य है।

अपने 'शृंगारकाल' नामकरण का औचित्य सिद्ध करते हुए मिश्र जी का कथन है कि इस नाम में शृंगारकाल की अधिकाधिक काव्य सामग्री अपने आप सिमट आती है। केवल शृंगारपरक रचना का ही बोध नहीं होता अपितु साज-सज्जा का, अलंकरण के सर्वव्यापक स्वरूप का भी पर्याप्त ज्ञान होता है। हिंदी के मध्यकाल में लक्षणग्रन्थ शास्त्रीय चिन्तन के लिए रचा गया, ऐसा मिश्र जी नहीं मानते। रसनिष्पत्ति के अनेक मतों, निष्पत्ति और संयोग का विचार ध्वनि की स्थापना के कारण आदि की चर्चा भी इन कवियों ने नहीं की। राज्यसभा में सम्मान प्राप्त करना ही इनका लक्ष्य था।

आधुनिक काल में पाश्चात्य साहित्यः चिंतन से संवाद के द्वारा काव्य मीमांसा और रसमीमांसा की प्रवृत्ति जगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'नाटक' से यह परंपरा जगी। परन्तु हिंदी की रस चर्चा को मिश्र जी मीमांसा नहीं मानते। उनका कथन है कि इन ग्रन्थों में संस्कृत में जो विचार हो चुका है, उसी को समझाया गया है। मिश्र जी ने एक नये 'मायारस' की व्यवस्था दी है। उनका कथन है कि चित्तवृत्ति दो प्रकार की होती है– प्रवृत्ति और निवृत्ति। उपादेयता भाव को प्रवृत्ति और हेयता भाव को निवृत्ति कहते हैं। यह संसार उपादेय है इसमें लगना चाहिए, यह हेय है इससे हटना चाहिए। यही क्रमशः प्रवृत्ति और निवृत्ति है। जगत के प्रति निवृत्ति में तो रस मानें पर जगत के प्रति प्रवृत्ति में रस न मानें यह तो ठीक नहीं। निष्कर्ष यह कि शांतरस की प्रतिपक्षता में माया रस होना चाहिए हो सकता है। इसकी (मायारस) चर्चा बहुत पहले भानुदत्त की रसतरंगिणी में की गयी है।

नायिका भेद प्रसंग में मिश्र जी संस्कृत में उपलब्ध सामग्री और रीतिकाल में एतद्विषयक सामग्री की चर्चा करते हुए कहते हैं कि रीतिकाल में इस प्रसंग में संस्कृत से नवीन सामग्री नहीं मिलती तथापि उन्होंने समय-समय पर चिन्तन अवश्य किया है और चिन्तन के उन कणों को संचित करने से पर्याप्त राशि इकट्ठी हो सकती है इसी भाँति अलंकार विषयक चर्चा भी संस्कृत काल से बीसवीं शताब्दी तक की गयी है।

शृंगारकाल विषयक चर्चा मिश्र जी ने विभाजन सीमा, प्रवृत्ति, रीतिबद्ध, रीतिमुक्त, हास्य काव्य, प्रशस्ति काव्य, नीति की सूक्तियाँ, नाट्यकाव्य, अनुवाद काव्य, गद्य शीर्षकों के अन्तर्गत विशद रूप से की है।

मिश्र जी भारतीय साहित्यशास्त्र के आचार्य हैं। रसवादी आचार्य हैं और शृंगार रस को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए समस्त रसों की अन्तर्भुक्ति शृंगार में मानते हैं। इस शृंगार का वर्णन रीतिकाल में सर्वाधिक हुआ है, अतः इस काल के सर्वाङ्. विवेचन का कार्य इन्होंने बड़े मनोयोग से किया है। न केवल शृंगार रस बल्कि रीतिकाल में उपलब्ध अन्य प्रवृत्तियों का भी शोध आधारित विस्तृत विवेचन किया। संस्कृत ग्रंथों की परंपरा पालि, प्राकृत, अप्रभ्रंश से होते हुए कैसे हिंदी में आ कर देशज तत्वों से युक्त होती है, इसकी भी वैज्ञानिक पड़ताल मिश्र जीने की है।

मिश्र जी के द्वारा किया गया नाटक और इस पर पाश्चात्य प्रभाव का आकलन तथा हिंदी के सामयिक इतिहास का विवेचन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिंदी-इतिहास, नाटक व काव्यशास्त्र में मिश्र जी का अपूर्व योगदान है।

BHDC-106.indd 39 19-03-2021 08:51:33

3.3.4 नंद दुलारे बाजपेयी

मानव जीवन को ही काव्य या साहित्य की 'वस्तु' मानने वाले बाजपेयी जी ख्यातिलब्ध समीक्षक व विचारक हैं। छायावाद के प्रबल समर्थक बाजपेयी जी ने यात्रा वृत्तान्त और संस्मरण' के साथ विपुल आलोचनात्मक गद्य साहित्य की रचना की है। 'हिंदी साहित्यः बीसवीं शताब्दी', जयशंकर प्रसाद', 'प्रेमचंद' आधुनिक साहित्य' नया साहित्यः नये प्रश्न 'महाकवि सूरदास' 'कवि सुमित्रानन्दन पन्त' 'नयी कविता 'रस सिद्धान्त, 'आधुनिक साहित्य सृजन और समीक्षा' तथा 'रीति और शैली' आदि रचनाएँ उनकी प्रतिभा व साहित्यिक रुचि की परिचायक हैं।

बाजपेयी जी के अनुसार, विकासशील मानव जीवन के महत्वपूर्ण या मार्मिक अंशों की 'अभिव्यक्ति' यही साहित्य की सामान्य परिभाषा हो सकती है। ये साहित्य के सन्दर्भ में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टियों का समन्वय ही नहीं अपितु प्राचीन और नवीन का भी समन्वय चाहते हैं। अपनी समीक्षा दृष्टि को उन्होंने हिंदी साहित्यः बीसवीं शताब्दी' की भूमिका में स्पष्ट किया है– कवि की अन्तरवृत्तियों का अध्ययन, कलात्मक, सौष्ठव का अध्ययन, टेकनीक (शैली) का अध्ययन, कवि की जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन, कवि के दार्शनिक सामाजिक और राजनीतिक विचारों का अध्ययन और काव्य के जीवन सम्बन्धी सामंजस्य और सन्देश का अध्ययन। इन सात चेष्टाओं के माध्यम से रचनाकार की अन्तरवृत्तियों और शैल्पिक सौन्दर्य व सौकुमार्य का अनुसन्धान व प्रस्तुति पर बाजपेयी जी बल देते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र के सम्यक बोध की स्थिति बाजपेयी जी के कुछ वाक्यों से होती है– रस भारतीय काव्यशास्त्र का अन्तरंग सत्व है। अलंकार सौन्दर्य का उद्घाटक तथा वक्रोक्ति, रीति एवं ध्वनि काव्य के अभिव्यंजना पक्ष से सम्बद्ध है। भारतीय काव्यशास्त्र के नवनिर्माण के लिए इन प्राचीन मान्यताओं को व्यापक अर्थ में वे प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

बाजपेयी जी, भारतीय एवं पाश्चात्य सिद्धान्तों के सुन्दरतम समन्वय' पर बल देते हैं। भारतीय विचारधारा में निहित आदर्श को बनाए रखने के लिए वे 'प्रकृतिवादी यथार्थवाद', अन्तश्चेतनावादी यथार्थवाद' तथा 'निराशा और कुण्ठावादी यथार्थवाद' से दूर रहने का परामर्श भी देते हैं। 'प्रसाद' और 'निराला' की समीक्षा के सन्दर्भ में बाजपेयी जी की समीक्षा दृष्टि को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। प्रसाद की भाँति नन्दुलारे बाजपेयी की घटनाक्रम और किसी विशेष स्थिति को पृष्ठभूमि रूप में और सौन्दर्य को स्थूल रूप में नहीं सूक्ष्म और चेतन चेष्टाओं की झलक रूप में देखना चाहते हैं। प्रसाद रसवादी कवि थे, बाजपेयी जी भी रसवादी समीक्षक है। ये मानते हैं कि महान कला कभी अश्लील नहीं हो सकती और सौन्दर्य तो चेतना की झलक है, इसलिए वह असत्य नहीं हो सकता। निराला की प्रशंसा वे इसलिए करते हैं कि उन्होंने भारत के श्रेष्ठ कवियों व आचार्यों को आत्मसात करके अपने काव्य को समृद्ध किया है, दूसरे उनकी काव्य चेतना का आधार मानववादी है। पंत की कल्पना शक्ति की प्रतिभा के ये प्रशंसक हैं।

कालक्रम से बाजपेयी जी के दृष्टिकोण व विचार सरणि में परिवर्तन होता गया है, क्योंकि उनका मानना है कि कवि भी मनुष्य की भाँति अपने समय की स्थितियों व प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है। आपने व्याख्यात्मक एवं विवेचनात्मक शैली में शालीनता, गंभीरता, व्यंग्यात्मकता, एवं प्रभावोत्पादकता के साथ अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

BHDC-106.indd 40 19-03-2021 08:51:33

'वैदिक जीवन दृष्टि' को बाजपेयी जी' समग्र जीवन दृष्टि' मानते हैं। आपने कवियों, लेखकों, उपन्यासकारों एवं नाटककारों की समीक्षा अपनी समग्र जीवन दृष्टि से की है। सौन्दर्य की सहज चेतना को उन्होंने आलोचना की अनिवार्य कसौटी मानी है और इसका स्वयं भी निष्ठा के साथ निर्वाह किया है।

3.3.5 डॉ. नगेन्द्र

डॉ. नगेन्द्र आधुनिक काल के सर्वाधिक चर्चित एवं महत्वपूर्ण आलोचकों में एक हैं। आपकी 50 मौलिक एवं संपादित पुस्तकें प्रकाशित हैं। हिंदी की मानवृद्धि के लिए आपने अंग्रेजी में लिखे गये ग्रन्थों का संपादन भी किया है। आपकी पुस्तकों में पंत, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ, नाटक, आधुनिक हिंदी कविता, नई समीक्षा, शैली विसान, मिथक, ध्वनि, अलंकार, रीतिशृंगार, वक्रोक्ति, साहित्य का इतिहास, भारतीय काव्यशास्त्र, भारतीय नाट्य साहित्य, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, मानविकी शब्द कोष एवं भारतीय साहित्य कोष आदि केन्द्रीय विषय हैं। यह विषयवैविध्य ही डॉ. नगेन्द्र की अद्भुत प्रतिभा का उदाहरण है।

डॉ. नगेन्द्र अंग्रेजी साहित्य के संस्कारों से समन्वित थे, इसलिए उनकी रचनात्मकता की धारणाओं में उन संस्कारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त एवं बाबू गुलाब राय उनके हिंदी साहित्य के प्रेरक रहे हैं। संस्कृत के भट्टनायक एवं अभिनव गुप्त और हिंदी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के प्रभाव को उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। अंग्रेजी के आई. ए. रिचर्ड्स, क्रोचे और कुछ फ्रायड से भी डॉ. नगेन्द्र प्रभावित हैं।

आत्माभिव्यक्ति एवं सौन्दर्य सृष्टि को डॉ. नगेन्द्र कला रचना के सिद्धान्त मानते हैं। भाव, कल्पना एवं बुद्धि जो काव्य के तत्व हैं इनमें भाव को आप प्रमुख मानते हैं। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति को आप तत्वतः एक मानते हैं। अनुभूति को इन्द्रिय ग्राह्य बनाने के लिए कवि बिम्ब एवं छंद का आधार ग्रहण करता है। वे आलोचना को आत्माभिव्यक्ति तथा ललित साहित्य का अंग स्वीकार करते हैं। साहित्य के सम्बन्ध में उठने वाली हर शंका एवं जिज्ञासा का वे स्पष्ट समाधान देते हैं।

काव्य के मूल्यांकन के लिए डॉ. नगेन्द्र 'रस-सिद्धान्त' को ही आधार मानते हैं। रस को उन्होंने उसकी सम्पूर्ण व्याप्ति में स्वीकार किया है। इसी आधार पर वे प्राचीन, नवीन, भारतीय पाश्चात्य सभी काव्य कृतियों के मूल्यांकन की सामर्थ्य रस में देखते हैं। उनका मानना है कि रस-सिद्धान्त विरोध मिट जाता है, वह सभी को अपने अनुकूल कर लेता है और अपने स्वरूप में ही सबका समन्वय कर लेता है। वस्तुतः डॉ. नगेन्द्र ने मानवीय अनुभूति या मानव की रागात्मक चेतना से रस का सम्बन्ध जोड़कर उसे कविता मात्र के मूल्यांकन की शाश्वत कसौटी बना दिया है।

रस के अपने इसी दृढ़ आग्रह के कारण डॉ. नगेन्द्र आधुनिक काल के आधुनिक समीक्षा सिद्धान्तों के प्रति कुछ कठोर भी दिखायी देते हैं। वे अपने निर्णयों के प्रति पूर्ण रूप से आश्वस्त रहने के बावजूद अन्य विद्वानों के उद्धरण भी देते हैं, आवश्यकता पड़ने पर उनसे अपनी असहमति भी व्यक्त करते हैं।

डॉ. नगेन्द्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परंपरा को आगे बढ़ाने व उसको कुछ समय व प्रवृत्ति के आधार पर परिवर्तित भी करने वाले आचार्य हैं। आपके ही प्रयासों से आज सम्पूर्ण संस्कृत का काव्यशास्त्र हिंदी में आ चुका है, पाश्चात्य काव्यशास्त्र की श्रेष्ठ

BHDC-106.indd 41 19-03-2021 08:51:33

पुस्तकें भी अनूदित हो कर आ चुकी हैं। आपने रस को शुद्ध मानवीय अनुभूति से जोड़ कर उसी स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया हैं। अपनी मध्यवर्ती स्थिति से डॉ. नगेन्द्र ने शास्त्रीय मर्यादा निष्ठ पण्डितों एवं नये लेखकों के बीच रस-सिद्धान्त को युगानुकूल व्याप्ति देने का प्रशंसनीय एवं महत्वपूर्ण कार्य किया है।

3.3.6 राममूर्ति त्रिपाठी

नई दृष्टि से प्राचीन काव्य चिन्तन का आख्यान करने वाले राममूर्ति त्रिपाठी जी की काव्यशास्त्र से सम्बद्ध पुस्तकें– 'साहित्य शास्त्र के प्रमुख पक्ष', 'काव्य तत्व विमर्श', 'सहृदय और साधारणीकरण', 'भारतीय काव्यशास्त्र के नये क्षितिज', 'तुलनात्मक काव्यशास्त्र' हैं– इनके अतिरिक्त 'सूर विमर्श', 'रस विमर्श' एवं 'आचार्य रामचन्द्र शुक्लः प्रस्थान और परम्परा हैं। आचार्य त्रिपाठी रसवादी आचार्य हैं।

'रस विमर्श' पुस्तक में डॉ. त्रिपाठी ने रस के स्वरूप और उसकी निष्पत्ति प्रक्रिया पर मुख्य रूप से विचार किया है तथा अनावश्यक विवरणों से तटस्थ रहते हुए विषय के विभिन्न वैचारिक पृष्ठभूमियों पर ऐतिहासिक क्रम से अपनी स्थापनाएँ दी हैं। विषय पर विचार के लिए पृष्ठभूमि के रूप में–

1) भरत की अनुभव संगत तथा दर्शन-निरपेक्ष भूमि

2) अन्य साहित्यिकों द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक-पृष्ठभूमि

3) भक्तों एवं आचार्यों की साम्प्रदायिक-पृष्ठभूमि

4) आधुनिक चिन्तकों की मनोवैज्ञानिक-पृष्ठभूमि

5) मार्क्सवादी सिद्धान्तों में निष्ठा रखने वालों की प्रगतिवादी-पृष्ठभूमि

6) नयी कविता एवं प्रयोगवादी आचार्यों की वैचारिक-भूमि, तथा

7) सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि की उपस्थापना की चर्चा की गई है।

डॉ. त्रिपाठी ने ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से भरत मुनि से लेकर आज तक के रस संबंधी चिन्तन का विवेचन किया है। आधुनिक विद्वानों की रस विषयक विवेचना एवं नवीन उपकरणों का उल्लेख भी किया गया है। ये उपकरण रस के प्राचीन विवेचन में प्राप्त नहीं होते हैं। रस से सम्बद्ध साधारणीकरण के स्वरूप व उसकी प्रक्रिया पर भी समग्र रूप से विचार किया गया है। साधारणीकरण की व्याख्या शास्त्रीय, स्वच्छंदतावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कोटियों में रखकर की गयी है।

'साहित्यशास्त्र के प्रमुख पक्ष', 'सहृदय और साधारणीकरण' तथा 'भारतीय काव्यशास्त्र के नये क्षितिज' में भरत मुनि से लेकर आधुनिक काल के आचार्यों द्वारा प्रस्तुत की गयी काव्यशास्त्रीय सामग्री को अपनी नवीन दृष्टि से परखने एवं आज के साहित्य के मूल्यांकन के योग्य बनाने का कार्य उन्होंने किया है।

आधुनिक काव्यशास्त्र के रूप में सक्रिय आलोचकों और समीक्षकों की व्यापक पड़ताल उनके मतों की भारतीय संदर्भों में समीक्षा के द्वारा लेखक ने पुरातन चिंतन की सार्थकता को सिद्ध करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की वैचारिकता के प्रस्थान बिन्दु इलियट एवं क्रोचे आदि के अवदानों की चर्चा के आचार्य त्रिपाठी के कार्य के महत्व को बढ़ा दिया है।

BHDC-106.indd 42 19-03-2021 08:51:33

आचार्य त्रिपाठी ने अपनी परंपरा से प्राप्त विरासत को सहेजने का प्रयास किया है क्योंकि हमारे साहित्य और सांस्कृतिक जगत की वहीं प्राणधारा है। पुरातन मनीषा आज के साहित्यालोचन की कहाँ-कहाँ तक सहयात्री हो सकती है, यही मूल चिन्ता उनकी है।

काव्यशास्त्र के गम्भीर एवं महत्वपूर्ण बिन्दु 'साधारणीकरण' की चर्चा डॉ. त्रिपाठी ने 'रस विमर्श' एवं 'सहृदय एवं साधारणीकरण' में की है। इनकी आस्था अभिनव गुप्त द्वारा स्थापित 'साधारणीकरण' के स्वरूप में है– साधारणीकरण का प्रयोजन केवल इतना ही है कि वह रसोपयोगी पदार्थों के सम्बंध में प्रतिबंधक मात्र संबंधों का विस्मरण या अज्ञान पैदा करा दें।' इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी लौकिक स्तरीय विघ्नों का न होना भी अनिवार्य मानते हैं।

समस्त संप्रदायों रस अलंकार रीति ध्वनि वक्रोक्ति व औचित्य तथा नाट्यशास्त्र से आधुनिक काल के आचार्यों तक के मत प्रस्तुत कर उसमें अपने अभिमत को जोड़ कर त्रिपाठी जी ने वर्तमान शास्त्रीय चिन्तन को नवीन दिशा दी है।

3.4 संप्रेषणीयता और रचनाशीलता : अज्ञेय का काव्य चिंतन

सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय आधुनिक काल के अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न कवि, आलोचक, सम्पादक, कहानीकार, हैं। अज्ञेय का साहित्य अपनी बौद्धिक मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक सूक्ष्मता के लिए जाना जाता है। एकान्त सौन्दर्य के प्रति आपके मन में प्रबल आकर्षण है और स्वतंत्र चिन्तन आपका मूल स्वभाव है। जीवन एवं मानवीय सम्बन्ध आपको रहस्यमय प्रतीत होते हैं। इसी कारण जिज्ञासा एवं सतत सत्यान्वेषण ही उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण है। स्वतंत्रता को ये चरम उपब्धि मानते हैं।

इनके अनुसार सच्ची कला कभी अनैतिक नहीं हो सकती। इलियट के विचारों से वे प्रभावित थे और उनकी परम्परा संबंधी अवधारणा का अनुवाद (हिंदी में) करते हुए वे अपने साहित्यिक शंकाओं का समाधान करते थे। उनका मानना था– साहित्य सृष्टि की मूल प्रेरणा साहित्यकार की एक आन्तरिक विवशता होती है। आत्म-प्रेरणा से ही साहित्यकार साहित्य सृजन में प्रवृन्त होता है।

शेखर एक जीवनी (2 दो भाग)– नदी के द्वीप और अपने-अपने अजनबी ये तीनों उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य की अमूल्य निधि हैं। कुछ विद्वान इन पर पश्चिमी विद्वानों यथा डी. एच. लारेंस, तुर्गनेव, रोम्याँ रोलाँ, वर्जीनिया वुल्फ, सार्त्र आदि का प्रभाव देखते हैं, जो कुछ हद तक सही भी है। अज्ञेय ने सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं जिनमें सामान्य मध्यवर्गीय अभिजात, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय क्रान्ति, शरणार्थी जीवन, पर्यटक जीवन, स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में नैतिकता का विश्लेषण आदि केन्द्रीय विषय हैं। देश-काल और सामाजिक सन्दर्भ इनकी कहानियों में प्रमुख स्थान नहीं रखते बल्कि व्यक्ति-चरित्र की गम्भीर आन्तरिक संवेदना को प्रस्तुत करना इनका प्रमुख ध्येय रहा हैं। उपन्यासों की चर्चा की जाय तो 'शेखर एक जीवनी' में शेखर परिस्थितियों में विकसित होते हुए व्यक्ति का चित्र है। 'स्वतंत्रता की खोज' ही शेखर का जीवन दर्शन है। समाज की खोखली होती हुई, मान्यताओं के बदले व्यक्ति की दृढ़तर मान्यताओं की प्रतिष्ठा करने में वह प्रयास रत है। इस उपन्यास के नायक में उपन्यासकार ने स्वयं को भी उपस्थित किया है। 'नदी के द्वीप' में व्यक्ति के प्रेम केन्द्रित मानसिक ग्रन्थियों के सूक्ष्म धागों को नहीं व्यक्ति की कथा है, उसकी

BHDC-106.indd 43 19-03-2021 08:51:33

पीड़ा से भरी कहानी है। यह समाज नहीं व्यक्ति की कथा है, उसकी पीड़ा का सच्चा चित्र है। वस्तुत इस उपन्यास में आधुनिक काल की नारी के अन्तर्मन की गूढ़ तीसरे 'उपन्यास' अपने-अपने अजनबी' में अपने सामने मृत्यु को देखकर उस क्षण मानव मन की पीड़ा, संवदेना, भय एवं चिन्ता का सच्चा एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। इन तीनों उपन्यासों का शिल्प विलक्षण व मनोरम है।

अज्ञेय ने निबन्ध, डायरी, यात्रावृत्त, रिपोर्ताज भी लिखे हैं। उनके व्यक्तित्व की अन्तर्मुखता एवं बौद्धिकता उनके गद्य-लेखन में स्पष्ट देखी जा सकती है। अज्ञेय की साहित्य के प्रति निष्ठा एक सच्चे मानववादी की निष्ठा है। अपनी परम्परा के प्रति गंभीर आस्था और एकान्त निष्ठा व बौद्धिकता अज्ञेय की विशेषता है।

अज्ञेय ने 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' की छायावादी कविताओं से अपनी काव्य यात्रा प्रारम्भ की और प्रयोगवाद तथा नयी कविता के विशिष्ट कवि रहे। 'तारसप्तक' 'दूसरा सप्तक' 'तीसरा सप्तक की भूमिकाएँ, त्रिशुंक, आत्मनेपद, भवन्ती, आलवाल, अद्यतन, युगसन्धियों पर, धार और किनारे आदि निबन्ध संग्रहों में अज्ञेय का काव्य चिन्तन संकलित है। उन्होंने सूत्र रूप में 'रचना' के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं उनको स्वीकार कर अनेक विद्वानों ने अपने आलोचना कर्म को विश्वसनीय बनाया है। साधारणीकरण' और 'सम्प्रेषण' जो काव्य चिन्तन की मूल समस्या है उस पर अज्ञेय ने अपनी इन रचनाओं में स्पष्ट विचार व्यक्त किए हैं। अज्ञेय के चिन्तन के केन्द्र में विज्ञान के विकास के समानान्तर मानव संवेदना के विकास की चिन्ता है। विज्ञान के विकास ने हमें तत्व के अस्तित्व के प्रति शंकालु बना दिया है दूसरी ओर मनोविज्ञान के आधुनिक शोधों ने प्रमाणित कर दिया कि मन एक यन्त्र है, इस तरह नैतिकता बोध भी एक यन्त्र शासित कल्पना सिद्ध होती है। विज्ञान ने पहले मनुष्य को बुद्धि सम्पन्न मानकर उसे अन्य जीवों से विशिष्ट बताया था, पर आज विज्ञान मनुष्य को पशु से अभिन्न मान रहा है। आज का मनोविज्ञान मनुष्य को कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं बता पा रहा है, अतः आज का मनुष्य संशयग्रस्त है।

आज के रचनाकार के लिए भी यह बड़ी समस्या है, क्योंकि यह परिस्थिति उसे भी संशयालु बनाती है, उसकी संवेदना दो हिस्सों में विभाजित हो जाती है। यह समस्या रचनाकार से पाठक की दूरी बढ़ाती है। इस दूरी को समाप्त करने के लिए अज्ञेय पाठक को भी रचनाकार के समीप पाना चाहते हैं। रचनाकार अपनी परिस्थितियों का अनिवार्य रूप से परिणाम होता है, अपने परिवेश में व्याप्त संघर्ष का वह फल होता है और कला संघर्ष का फल है। संघर्ष या कि साहित्य की प्रेरणा साहित्यकार की एक आन्तरिक विवशता है। परिस्थितियों के दबाव के परिणामस्वरूप रचनाकार अपनी भीतरी, अन्तर्मन की विवशता में रचना प्रवृत्त होता है।

ऐसी रचना का आस्वादन या कहें कि सम्प्रेषण पाठक तक रचनाकार की अपनी अनुभूति के यथातथ्य रूप में उचित माध्यम द्वारा प्रस्तुति पर संभव हो पाता है।

अज्ञेय की रचनाशीलता सामाजिक अनुपयोगिता के विरुद्ध अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न-अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह हैं जिसमें परिस्थितिगत दबाव के फलस्वरूप आन्तरिक विवशता, प्रयोगशीलता, संवदेना का पुनःसंस्कार, परम्परा और आधुनिकता, अनुभव की विलक्षणता, अहं का विलयन स्वतंत्र चेतना व जिजीविषा आदि अनेक तत्व होते हैं। इन सबके विलयन से रचना निष्पन्न होती है उसका आस्वादन इसी स्तर पर पहुँचे असाध्यवीणा के 'केशकम्बली' ही कर सकते हैं।

सम्पेषणीयता एवं रचनाशीलता का प्रश्न अत्यन्त प्राचीन है और प्राचीन काल से ही इस पर विमर्श होता आया है। सबने अपने समय व प्रतिभा के अनुसार इसका समाधान किया है। आज का समय अत्यन्त जटिल है। मनुष्य की बुद्धि, उसका चित्त, उसकी इन्द्रियाँ विज्ञान, समय की चकाचौंध व बाजार के आकर्षण में बावले हो उठे हैं उसकी आत्मा, नैतिकता, संवेदनशीलता, आत्मीयता, सत्य के संस्कृति के प्रति निष्ठा आदि दयनीय स्थिति में हैं। रचना व उसका संप्रेषण इनके अभाव में कठिन है। ऐसी स्थिति में समस्या रचनाकार के सामने भी है और पाठक के सामने भी। दोनों की संवेदनशीलता, प्रकृति से नैकट्य, मानव मन की जटिलता, मीडिया व बाजार का माया जाल इनके बीच सूक्ष्म भावों की पकड़ में सक्षमता व साहित्य तथा भाषा की परंपरा का ज्ञान, आलोचना की वे कसौटियाँ जो शास्त्रीय न हो कर मनोवैज्ञानिक हो, सहज तथा बोधगम्य हों सम्भवतः सम्प्रेषणीयता व रचनाशीलता में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

रचनाशीलता में काव्यशास्त्रीय तत्वों के साथ काव्य के तत्वों का गम्भीर ज्ञान व लोक मन की समझ भी अनिवार्य है। इन सबसे मिलकर काव्यशास्त्रीय ढाँचा निर्मित होता है और यही संप्रेषणीयता तथा रचनाशीलता का मूल है।

3.5 सारांश

हिंदी काव्यशास्त्र का वास्तविक प्रारंभ रीतिकाल से होता है परन्तु भक्तिकाल के कृपाराम् सूरदास, केशवदास में इसके विवरण प्राप्त होते हैं। रीतिकाल में बिहारी, देव मतिराम, चिन्तामणि, कुलपति, सामनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि आदि का प्रयास सराहनीय है। आधुनिक काल के शुक्ल पूर्व युगीन चिन्तकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावरी प्रसाद द्विवेदी, बाबूगुलाब राय, श्यामसुन्दर दास आदि ने परंपरागत काव्यशास्त्र में पाश्चात्य काव्यशास्त्र के तत्वों के समन्वय का प्रारंभ किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसमीमांसा ग्रन्थ में रस को आध्यात्मिकता के प्रभाव से मुक्त साहित्यशास्त्र को तुलनात्मक रूप से विवेचित कर आधुनिक काल के अनुकूल भारतीय काव्यशास्त्र को प्रस्तुत किया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, विद्यानिवास मिश्र, राममूर्ति त्रिपाठी आदि समस्त विद्वानों ने प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र की विवेचना व सराहना की है, किन्तु उसकी समग्रता तथा विदेशी साहित्यशास्त्र से भी ग्राह्य सामग्री को ग्रहण कर एक समन्वयात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। काव्यशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों का उद्देश्य काव्यवस्तु की रचना प्रक्रिया व उसकी सम्प्रेषणीयता को विवेचित करने का रहा हैं। अर्थात रचना कैसे निष्पन्न होती है। तथा एक कवि की रचना कैसे जनसामान्य की वस्तु बन जाती है। इन प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास प्राचीन काल से हो रहा है और आज भी यह कार्य चल रहा है। इस समस्या पर अज्ञेय ने वर्तमान समय की परिस्थिति जन्य संवदेना, मानव मन की दुविधा, वैज्ञानिकता, मनोवैज्ञानिकता, अनुभूति व आत्माभिव्यक्ति की जटिलता पर समय-समय पर अपनी रचनाओं में विचार करते हुए उत्तर देने का कार्य किया है।

3.6 अवधारणात्मक शब्द

चित्रालंकार : जहाँ वर्णों का विन्यास इस रीति से किया जाता है कि वह विन्यास खड्ग, मुरज, कमल आदि की आकृति का हेतु हो जाता है, वहाँ चित्रालंकार होता है।

BHDC-106.indd 45 19-03-2021 08:51:34

मनोवैज्ञानिक विवेचन : मानव मन का विवेचन जहाँ मनोविज्ञान की पद्धति पर किया जाता है, वह मनोवैज्ञानिक विवेचन कहलाता है।

कलावाद : जिस वाद में कविता के बाह्यय पक्ष अर्थात कला पक्ष को प्रमुखता दी जाती है, उसे कलावाद कहते हैं।

अभिव्यंजनावाद : क्रोचे का सौन्दर्य सिद्धान्त अभिव्यंजनावाद है। अन्तःप्रेरणा के क्षण में सहसा कवि को अन्तःप्रज्ञा में कोई वस्तु उदभाषित हो जाती है और इसी के साथ वह अभिव्यंजित भी होती है। क्रोचे इस कलावस्तु को अखंड और अविभाज्य मानता है।

अन्तश्चेतनावाद : यह फ्रायड का कला सिद्धान्त है। फ्रायड के अनुसार, मानव मन की वासनाएँ काम मूला होती हैं, इनकी कला या साहित्य के माध्यम से सुन्दर अभिव्यक्ति होती है।

प्रवृत्ति : किसी कार्य या संसार में लगी हुई मनोवृत्ति को प्रवृत्ति कहते हैं।

निवृत्ति : किसी कार्य या संसार से हट चुकी मनोवृत्ति को निवृत्ति कहते हैं।

प्रगतिवादी जीवन दृष्टि : यह मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित होती है, इसमें निर्बल व श्रमिक की पक्षधरता तथा शोषक की निन्दा एवं ईश्वर का निषेध तथा पूँजीवादी सत्ता का प्रबल विरोध होता है।

साधारणीकरण : असाधारण को साधारण व असामान्य को सामन्य बनाने की रस दशा साधारणीकरण है।

सम्प्रेषणीयता : रचनाकार के द्वारा प्रस्तुत की गयी वस्तु को उसी रूप में श्रोता या पाठक तक पहुँचाना ही सम्प्रेषणीयता है।

सामाजिक अनुपयोगिता : शारीरिक या मानसिक रूप से कोई अक्षमता जो व्यक्ति को उसके सामाजिक दायित्व की पूर्ति में बाधा बन जाय, यही उसकी सामाजिक अनुपयोगिता है।

शैलीविज्ञान : शैलीविज्ञान भाषिक विश्लेषण की वह पद्धति है, जिसमें भाषा के सभी अभिव्यंजक उपादानों यथा– ध्वनि, छन्द, पद, वाक्य, शब्द सबका समावेश है। अर्थात भाषा विज्ञान का समूचा आधार लेकर शैलीविज्ञान रचना का विश्लेषण करता है।

3.7 उपयोगी पुस्तकें

आचार्य रामचन्द्र शुक्लः प्रस्थान और परंपरा– डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

रस विमर्श– डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

हिंदी का गद्य साहित्य– डॉ. राममूर्ति तिवारी

काव्यशास्त्र– डॉ. भागीरथ मिश्र

नया साहित्य नये प्रश्न– आचार्य नन्दुलारे बाजपेयी

अभिनव साहित्य चिन्तन– डॉ. भगीरथ दीक्षित

BHDC-106.indd 46 19-03-2021 08:51:34

हिंदी काव्यशास्त्र का विकास– डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'

रचना का पक्ष– डॉ. नन्दकिशोर नवल

3.8 बोध प्रश्न

1) नन्द दुलारे बाजपेयी के काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण का परिचय दीजिए।

2) सम्प्रेषण का तात्पर्य समझाइए।

3) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के रस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

4) हिंदी काव्यशास्त्र की विकास यात्रा की चर्चा कीजिए।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए उपभाग 3.3.4

2) देखिए भाग 3.4

3) देखिए उपभाग 3.3.2

4) देखिए भाग 3.2

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY